कायर कहानी - मुंशी प्रेमचन्द

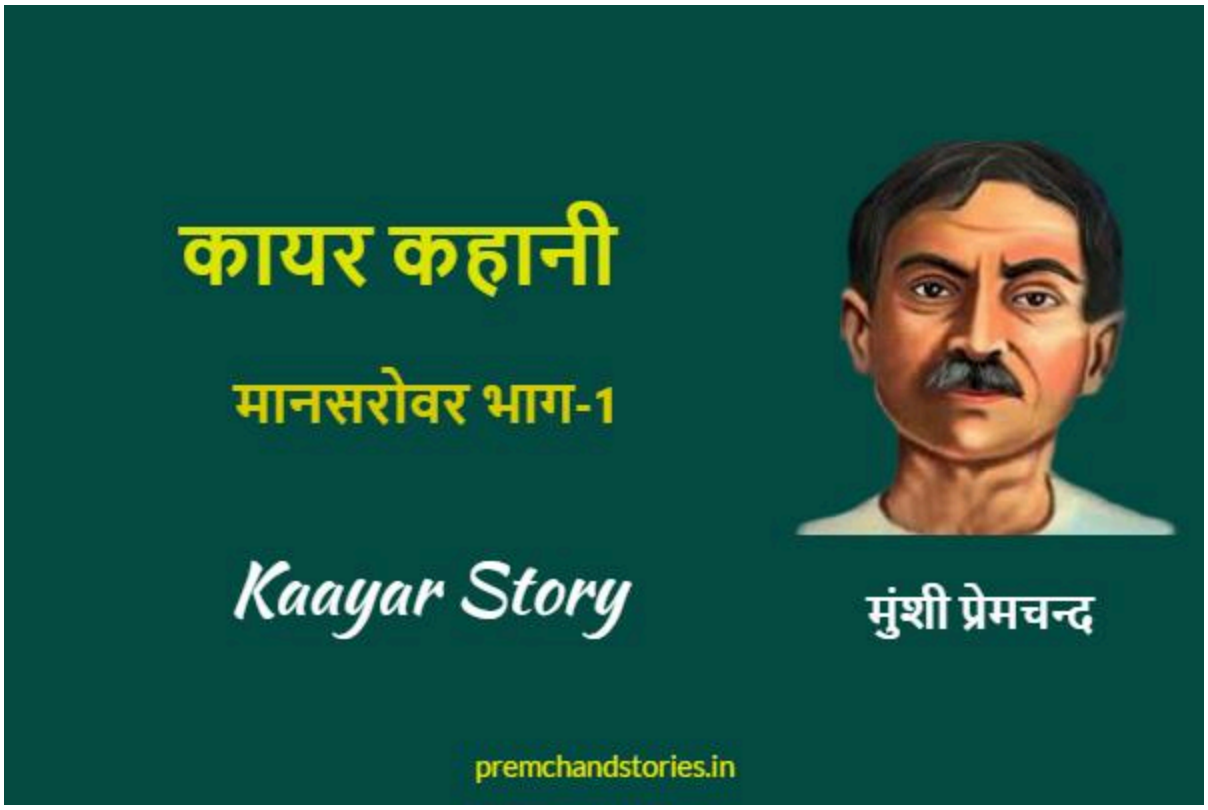

युवक का नाम केशव था, युवती का प्रेमा। दोनों एक ही कालेज के और एक ही क्लास के विद्यार्थी थे। केशव नये विचारों का युवक था, जात-पाँत के बन्धनों का विरोधी। प्रेमा पुराने संस्कारों की कायल थी, पुरानी मर्यादाओं और प्रथाओं में पूरा विश्वास रखनेवाली; लेकिन फिर भी दोनों में गाढ़ा प्रेम हो गया था। और यह बात सारे कालेज में मशहूर थी। केशव ब्राह्मण होकर भी वैश्य कन्या प्रेमा से विवाह करके अपना जीवन सार्थक करना चाहता था। उसे अपने माता-पिता की परवाह न थी। कुल-मर्यादा का विचार भी उसे स्वांग-सा लगता था। उसके लिए सत्य कोई वस्तु थी, तो प्रेम थी; किन्तु प्रेमा के लिए माता-पिता और कुल-परिवार के आदेश के विरुद्ध एक कदम बढ़ाना भी असम्भव था।

सन्ध्या का समय है। विक्टोरिया-पार्क के एक निर्जन स्थान में दोनों आमने-सामने हरियाली पर बैठे हुए हैं। सैर करने वाले एक-एक करके विदा हो गये; किन्तु ये दोनों अभी वहीं बैठे हुए हैं। उनमें एक ऐसा प्रसंग छिड़ा हुआ है, जो किसी तरह समाप्त नहीं होता।

केशव ने झुँझलाकर कहा-इसका यह अर्थ है कि तुम्हें मेरी परवाह नहीं है?

प्रेमा ने उसको शान्त करने की चेष्टा करके कहा-तुम मेरे साथ अन्याय कर रहे हो, केशव! लेकिन मैं इस विषय को माता-पिता के सामने कैसे छेड़ूं, यह मेरी समझ में नहीं आता। वे लोग पुरानी रूढियों के भक्त हैं। मेरी तरफ से कोई ऐसी बात सुनकर मन में जो-जो शंकाएँ होंगी, उनकी तुम कल्पना कर सकते हो?

केशव ने उग्र भाव से पूछा-तो तुम भी उन्हीं पुरानी रूढ़ियों की गुलाम हो?

प्रेमा ने अपनी बड़ी-बड़ी आँखों में मृदु-स्नेह भरकर कहा-नहीं, मैं उनकी गुलाम नहीं हूँ, लेकिन माता-पिता की इच्छा मेरे लिए और सब चीजों से अधिक मान्य है।

'तुम्हारा व्यक्तित्व कुछ नहीं है?'

'ऐसा ही समझ लो।'

'मैं तो समझता था कि ये ढकोसले मूर्खों के लिए ही हैं; लेकिन अब मालूम हुआ कि तुम-जैसी विदुषियाँ भी उनकी पूजा करती हैं। जब मैं तुम्हारे लिए संसार को छोडऩे को तैयार हूँ तो तुमसे भी यही आशा करता हूँ।'

प्रेमा ने मन में सोचा, मेरा अपनी देह पर क्या अधिकार है। जिन माता-पिता ने अपने रक्त से मेरी सृष्टि की है, और अपने स्नेह से उसे पाला है, उनकी मरजी के खिलाफ कोई काम करने का उसे कोई हक नहीं।

उसने दीनता के साथ केशव से कहा-क्या प्रेम स्त्री और पुरुष के रूप ही में रह सकता है, मैत्री के रूप में नहीं? मैं तो आत्मा का बन्धन समझती हूँ।

केशव ने कठोर भाव से कहा-इन दार्शनिक विचारों से तुम मुझे पागल कर दोगी, प्रेमा! बस, इतना ही समझ लो मैं निराश होकर जिन्दा नहीं रह सकता। मैं प्रत्यक्षवादी हूँ, और कल्पनाओं के संसार में प्रत्यक्ष का आनन्द उठाना मेरे लिए असम्भव है।

यह कहकर उसने प्रेमा का हाथ पकडक़र अपनी ओर खींचने की चेष्टा की। प्रेमा ने झटके से हाथ छुड़ा लिया और बोली-नहीं केशव, मैं कह चुकी हूँ कि मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। तुम मुझसे वह चीज न माँगो, जिस पर मेरा कोई अधिकार नहीं है।

केशव को अगर प्रेमा ने कठोर शब्द कहे होते तो भी उसे इतना दु:ख न हुआ होता। एक क्षण तक वह मन मारे बैठा रहा, फिर उठकर निराशा भरे स्वर में बोला-'जैसी तुम्हारी इच्छा! अहिस्ता-अहिस्ता कदम-सा उठाता हुआ वहाँ से चला गया। प्रेमा अब भी वहीं बैठी आँसू बहाती रही।

2

रात को भोजन करके प्रेमा जब अपनी माँ के साथ लेटी, तो उसकी आँखों में नींद न थी। केशव ने उसे एक ऐसी बात कह दी थी, जो चंचल पानी में पडऩे वाली छाया की तरह उसके दिल पर छायी हुई थी। प्रतिक्षण उसका रूप बदलता था। वह उसे स्थिर न कर सकती थी। माता से इस विषय में कुछ कहे तो कैसे? लज्जा मुँह बन्द कर देती थी। उसने सोचा, अगर

केशव के साथ मेरा विवाह न हुआ तो उस समय मेरा क्या कत्र्तव्य होगा। अगर केशव ने कुछ उद्दण्डता कर डाली तो मेरे लिए संसार में फिर क्या रह जायगा; लेकिन मेरा बस ही क्या है। इन भाँति-भाँति के विचारों में एक बात जो उसके मन में निश्चित हुई, वह यह थी कि केशव के सिवा वह और किसी से विवाह न करेगी।

उसकी माता ने पूछा-क्या तुझे अब तक नींद न आयी? मैंने तुझसे कितनी बार कहा कि थोड़ा-बहुत घर का काम-काज किया कर; लेकिन तुझे किताबों से ही फुरसत नहीं मिलती। चार दिन में तू पराये घर जायगी, कौन जाने कैसा घर मिले। अगर कुछ काम करने की आदत न रही, तो कैसे निबाह होगा?

प्रेमा ने भोलेपन से कहा-मैं पराये घर जाऊँगी ही क्यों?

माता ने मुस्कराकर कहा-लड़कियों के लिए यही तो सबसे बड़ी विपत्ति है, बेटी! माँ-बाप की गोद में पलकर ज्यों ही सयानी हुई, दूसरों की हो जाती है। अगर अच्छे प्राणी मिले, तो जीवन आराम से कट गया, नहीं रो-रोकर दिन काटना पड़ा। सब कुछ भाग्य के अधीन है। अपनी बिरादरी में तो मुझे कोई घर नहीं भाता। कहीं लड़कियों का आदर नहीं; लेकिन करना तो बिरादरी में ही पड़ेगा। न जाने यह जात-पाँत का बन्धन कब टूटेगा?

प्रेमा डरते-डरते बोली-कहीं-कहीं तो बिरादरी के बाहर भी विवाह होने लगे हैं!

उसने कहने को कह दिया; लेकिन उसका हृदय काँप रहा था कि माता जी कुछ भाँप न जायँ।

माता ने विस्मय के साथ पूछा-क्या हिन्दुओं में ऐसा हुआ है!

फिर उसने आप-ही-आप उस प्रश्न का जवाब भी दिया-और दो-चार जगह ऐसा हो भी गया, तो उससे क्या होता है?

प्रेमा ने इसका कुछ जवाब न दिया, भय हुआ कि माता कहीं उसका आशय समझ न जायँ। उसका भविष्य एक अन्धेरी खाई की तरह उसके सामने मुँह खोले खड़ा था, मानों उसे निगल जायगा।

उसे न जाने कब नींद आ गयी।

3

प्रात:काल प्रेमा सोकर उठी, तो उसके मन में एक विचित्र साहस का उदय हो गया था। सभी महत्वपूर्ण फैसले हम आकस्मिक रूप से कर लिया करते हैं, मानो कोई दैवी-शक्ति हमें उनकी ओर खींच ले जाती है; वही हालत प्रेमा की थी। कल तक वह माता-पिता के निर्णय को मान्य समझती थी, पर संकट को सामने देखकर उसमें उस वायु की हिम्मत पैदा हो गयी थी, जिसके सामने कोई पर्वत आ गया हो। वही मन्द वायु प्रबल वेग से पर्वत के मस्तक पर चढ़ जाती है और उसे कुचलती हुई दूसरी तरफ जा पहुँचती है। प्रेमा मन में सोच रही थी-मानो, यह देह माता-पिता की है; किन्तु आत्मा तो मेरी है। मेरी आत्मा को जो कुछ भुगतना पड़ेगा, वह इसी देह से तो भुगतना पड़ेगा। अब वह इस विषय में संकोच करना अनुचित ही नहीं, घातक समझ रही थी। अपने जीवन को क्यों एक झूठे सम्मान पर बलिदान करे? उसने सोचा विवाह का आधार अगर प्रेम न हो, तो वह देह का विक्रय है। आत्म-समर्पण क्यों बिना प्रेम के भी हो सकता है? इस कल्पना ही से कि न जाने किस अपरिचित युवक से उसका विवाह हो जायगा, उसका हृदय विद्रोह कर उठा।

वह अभी नाश्ता करके कुछ पढने़ जा रही थी कि उसके पिता ने प्यार से पुकारा-मैं कल तुम्हारे प्रिन्सिपल के पास गया था, वे तुम्हारी बड़ी तारीफ कर रहे थे।

प्रेमा ने सरल भाव से कहा-आप तो यों ही कहा करते हैं।

'नहीं, सच।'

यह कहते हुए उन्होंने अपनी मेज की दराज खोली, और मखमली चौखटों में जड़ी हुई एक तस्वीर निकालकर उसे दिखाते हुए बोले-यह लडक़ा आयी०सी०एस० के इम्तहान में प्रथम आया है। इसका नाम तो तुमने सुना होगा?

बूढ़े पिता ने ऐसी भूमिका बाँध दी थी कि माँ उनका आशय न समझ सकी लेकिन प्रेमा भाँप गयी! उनका मन तीर की भाँति लक्ष्य पर जा पहुँचा। उसने बिना तस्वीर की ओर देखे ही कहा-नहीं, मैंने तो उसका नाम नहीं सुना।

पिता ने बनावटी आश्चर्य से कहा-क्या! तुमने उसका नाम ही नहीं सुना? आज के दैनिक पत्र में उसका चित्र और जीवन-वृत्तान्त छपा है।

प्रेमा ने रुखाई से जवाब दिया-होगा, मगर मैं तो उस परीक्षा का कोई महत्त्व नहीं समझती। मैं तो समझती हूँ, जो लोग इस परीक्षा में बैठते हैं वे पल्ले सिर के स्वार्थी होते हैं। आखिर उनका उद्देश्य इसके सिवा और क्या होता है कि अपने गरीब, निर्धन, दलित भाइयों पर शासन करें और खूब धन संचय करें। यह तो जीवन का कोई ऊँचा उद्देश्य नहीं है।

इस आपत्ति में जलन थी, अन्याय था; निर्दयता थी। पिता जी ने समझा था, प्रेमा यह बखान सुनकर लट्टू हो जायगी। यह जवाब सुनकर तीखे स्वर में बोले-तू तो ऐसी बातें कर रही है जैसे तेरे लिए धन और अधिकार का कोई मूल्य ही नहीं।

प्रेमा ने ढिठाई से कहा-हाँ, मैं तो इसका मूल्य नहीं समझती। मैं तो आदमी में त्याग देखती हूँ। मैं ऐसे युवकों को जानती हूँ, जिन्हें यह पद जबरदस्ती भी दिया जाए, तो स्वीकार न करेंगे।

पिता ने उपहास के ढंग से कहा-यह तो आज मैंने नई बात सुनी। मैं तो देखता हूँ कि छोटी-छोटी नौकरियों के लिए लोग मारे-मारे फिरते हैं। मैं जरा उस लडक़े की सूरत देखना चाहता हूँ, जिसमें इतना त्याग हो। मैं तो उसकी पूजा करूँगा।

शायद किसी दूसरे अवसर पर ये शब्द सुनकर प्रेमा लज्जा से सिर झुका लेती; पर इस समय उसकी दशा उस सिपाही की सी थी, जिसके पीछे गहरी खाई हो। आगे बढऩे के सिवा उसके लिए और कोई मार्ग न था। अपने आवेश को संयम से दबाती हुई, आँखों में विद्रोह भरे, वह अपने कमरे में गयी, और केशव के कई चित्रों में से वह एक चित्र चुनकर लायी, जो उसकी निगाह में सबसे खराब था, और पिता के सामने रख दिया। बूढ़े पिता जी ने चित्र को उपेक्षा के भाव से देखना चाहा; लेकिन पहली दृष्टि ही में उसने उन्हें आकर्षित कर लिया। ऊँचा कद था और दुर्बल होने पर भी उसका गठन, स्वास्थ्य और संयम का परिचय दे रहा था। मुख पर प्रतिभा का तेज न था; पर विचारशीलता का कुछ ऐसा प्रतिबिम्ब था, जो उसके मन में विश्वास पैदा करता था।

उन्होंने उस चित्र की ओर देखते हुए पूछा-यह किसका चित्र है?

प्रेमा ने संकोच से सिर झुकाकर कहा-यह मेरे ही क्लास में पढ़ते हैं।

‘अपनी ही बिरादरी का है?’

प्रेमा की मुखमुद्रा धूमिल हो गयी। इसी प्रश्न के उत्तर पर उसकी किस्मत का फैसला हो जायगा। उसके मन में पछतावा हुआ कि व्यर्थ मैं इस चित्र को यहाँ लायी। उसमें एक क्षण के लिए जो दृढ़ता आयी थी, वह इस पैने प्रश्न के सामने कातर हो उठी। दबी हुई आवाज में बोली-‘जी नहीं, वह ब्राह्मण हैं।’ और यह कहने के साथ ही क्षुब्ध होकर कमरे से निकल गयी मानों यहाँ की वायु में उसका गला घुटा जा रहा हो और दीवार की आड़ में होकर रोने लगी।

लाला जी को तो पहले ऐसा क्रोध आया कि प्रेमा को बुलाकर साफ-साफ कह दें कि यह असम्भव है। वे उसी गुस्से में दरवाजे तक आये, लेकिन प्रेमा को रोते देखकर नम्र हो गये। इस युवक के प्रति प्रेमा के मन में क्या भाव थे, यह उनसे छिपा न रहा। वे स्त्री-शिक्षा के पूरे समर्थक थे; लेकिन इसके साथ ही कुल-मर्यादा की रक्षा भी करना चाहते थे। अपनी ही जाति के सुयोग्य वर के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर सकते थे; लेकिन उस क्षेत्र के बाहर कुलीन से कुलीन और योग्य से योग्य वर की कल्पना भी उनके लिए असह्य थी। इससे बड़ा अपमान वे सोच ही न सकते थे।

उन्होंने कठोर स्वर में कहा-आज से कालेज जाना बन्द कर दो, अगर शिक्षा कुल-मर्यादा को डुबोना ही सिखाती है,तो कु-शिक्षा है।

प्रेमा ने कातर कण्ठ से कहा-परीक्षा तो समीप आ गयी है।

लाला जी ने दृढ़ता से कहा-आने दो।

और फिर अपने कमरे में जाकर विचारों में डूब गये।

छः महीने गुजर गये।

लाला जी ने घर में आकर पत्नी को एकान्त में बुलाया और बोले-जहाँ तक मुझे मालूम है, केशव बहुत ही सुशील और प्रतिभाशाली युवक है। मैं तो समझता हूँ प्रेमा इस शोक में घुल-घुलकर प्राण दे देगी। तुमने भी समझाया, मैंने भी समझाया, दूसरों ने भी समझाया; पर उस पर कोई असर ही नहीं होता। ऐसी दशा में हमारे लिए और क्या उपाय है।

उनकी पत्नी ने चिन्तित भाव से कहा-कर तो दोगे; लेकिन रहोगे कहाँ? न जाने कहाँ से यह कुलच्छनी मेरी कोख में आयी?

लाला जी ने भवें सिकोड़कर तिरस्कार के साथ कहा-यह तो हजार दफा सुन चुका; लेकिन कुल-मर्यादा के नाम को कहाँ तक रोएँ। चिड़िया का पर खोलकर यह आशा करना कि वह तुम्हारे आँगन में ही फुदकती रहेगी भ्रम है। मैंने इस पर पर ठण्डे दिल से विचार किया है और इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि हमें इस आपद्धर्म को स्वीकार कर लेना ही चाहिए। कुल-मर्यादा के नाम पर मैं प्रेमा की हत्या नहीं कर सकता। दुनिया हँसती हो, हँसे; मगर वह जमाना बहुत जल्द आनेवाला है, जब ये सभी बन्धन टूट जाएँगे। आज भी सैकड़ों विवाह जात-पाँत के बन्धनों को तोड़कर हो चुके हैं। अगर विवाह का उद्देश्य स्त्री और पुरुष का सुखमय जीवन है, तो हम प्रेमा की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं।

वृद्धा ने क्षुब्ध होकर कहा-जब तुम्हारी यही इच्छा है, तो मुझसे क्या पूछते हैं? लेकिन मैं कहे देती हूँ, कि मैं इस विवाह के नजदीक न जाऊँगी, न कभी इस छोकरी का मुँह देखूँगी, समझ लूँगी, जैसे और सब लड़के मर गये वैसे यह भी मर गयी।

‘तो फिर आखिर तुम क्या करने को कहती हो?’

‘क्यों नहीं उस लडक़े से विवाह कर देते, उसमें क्या बुराई है? वह दो साल में सिविल सरविस पास करके आ जायगा। केशव के पास क्या रखा है, बहुत होगा किसी दफ्तर में क्लर्क हो जायगा।’

‘और अगर प्रेमा प्राण-हत्या कर ले, तो?’

‘तो कर ले, तुम तो उसे और शह देते हो? जब उसे हमारी परवाह नहीं है, तो हम उसके लिए अपने नाम को क्यों कलंकित करें? प्राण-हत्या करना कोई खेल नहीं है। यह सब धमकी है। मन घोड़ा है, जब तक उसे लगाम न दो, पु_े पर हाथ भी न रखने देगा। जब उसके मन का यह हाल है, तो कौन कहे, केशव के साथ ही जिन्दगी भर निबाह करेगी। जिस तरह आज उससे प्रेम है, उसी तरह कल दूसरे से हो सकता है। तो क्या पत्ते पर अपना माँस बिकवाना चाहते हो?

लालाजी ने स्त्री को प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखकर कहा-और अगर वह कल खुद जाकर केशव से विवाह कर ले, तो तुम क्या कर लोगी? फिर तुम्हारी कितनी इज्जत रह जायगी। वह चाहे संकोच-वश, या हम लोगों के लिहाज से यों ही बैठी रहे; पर यदि जिद पर कमर बाँध ले, हम-तुम कुछ नहीं कर सकते।

इस समस्या का ऐसा भीषण अन्त भी हो सकता है, यह इस वृद्धा के ध्यान में भी न आया था। यह प्रश्न बम के गोले की तरह उसके मस्तक पर गिरा। एक क्षण तक वह अवाक्ां बैठी रह गयी, मानों इस आघात ने उसकी बुद्धि की धज्जियाँ उड़ा दी हों। फिर पराभूत होकर बोली-तुम्हें अनोखी ही कल्पनाएँ सूझती हैं। मैंने तो आज तक कभी भी नहीं सुना कि किसी कुलीन कन्या ने अपनी इच्छा से विवाह किया है।

‘तुमने न सुना हो; लेकिन मैंने सुना है, और देखा है और ऐसा होना बहुत सम्भव है।’

‘जिस दिन ऐसा होगा; उस दिन तुम मुझे जीती न देखोगे।’

‘मैं यह नहीं कहता कि ऐसा होगा ही; लेकिन होना सम्भव है।’

‘तो जब ऐसा होना है, तो इससे तो यही अच्छा है कि हमीं इसका प्रबन्ध करें। जब नाक ही कट रही है, तो तेज छुरी से क्यों न कटे। कल केशव को बुलाकर देखो, क्या कहता है।’

5

केशव के पिता सरकारी पेन्शनर थे, मिजाज के चिड़चिड़े और कृपण। धर्म के आडम्बरों में ही उनके चित्त को शान्ति मिलती थी। कल्पना-शक्ति का अभाव था। किसी के मनोभावों का सम्मान न कर सकते थे। वे अब भी उस संसार में रहते थे, जिसमें उन्होंने अपने बचपन और जवानी के दिन काटे थे। नवयुग की बढ़ती हुई लहर को वे सर्वनाश कहते थे, और कम-से-कम अपने घर को दोनों हाथों और दोनों पैरों का जोर लगाकर उससे बचाए रखना चाहते थे; इसलिए जब एक दिन प्रेमा के पिता उसके पास पहुँचे और केशव से प्रेमा के विवाह का प्रस्ताव किया, तो बूढ़े पण्डित जी अपने आप में न रह सके। धुँधली आँखें फाडक़र बोले-आप भंग तो नहीं खा गये हैं? इस तरह का सम्बन्ध और चाहे जो कुछ हो, विवाह नहीं है। मालूम होता है, आपको भी नये जमाने की हवा लग गयी।

बूढ़े बाबू जी ने नम्रता से कहा-मैं खुद ऐसा सम्बन्ध नहीं पसन्द करता। इस विषय में मेरे भी वही विचार हैं, जो आपके; पर बात ऐसी आ पड़ी है कि मुझे विवश होकर आपकी सेवा में आना पड़ा। आजकल के लडक़े और लड़कियाँ कितने स्वेच्छाचारी हो गये हैं, यह तो आप

जानते ही हैं। हम बूढ़े लोगों के लिए अब अपने सिद्धान्तों की रक्षा करना कठिन हो गया है। मुझे भय है कि कहीं ये दोनों निराश होकर अपनी जान पर न खेल जायँ।

बूढ़े पण्डित जी जमीन पर पाँव पटकते हुए गरज उठे-आप क्या कहते हैं, साहब! आपको शरम नहीं आती? हम ब्राह्मण हैं और ब्राह्मणों में भी कुलीन। ब्राह्मण कितने ही पतित हो गये हों, इतने मर्यादा-शून्य नहीं हुए हैं कि बनिये-बक्कालों की लडक़ी से विवाह करते फिरें! जिस दिन कुलीन ब्राह्मणों में लड़कियाँ न रहेंगी, उस दिन यह समस्या उपस्थित हो सकती है। मैं कहता हूँ, आपको मुझसे यह बात कहने का साहस कैसे हुआ?

बूढ़े बाबू जी जितना ही दबते थे, उतना ही पण्डित जी बिगड़ते थे। यहाँ तक कि लाला जी अपना अपमान ज्यादा न सह सके, और अपनी तकदीर को कोसते हुए चले गये।

उसी वक्त केशव कालेज से आया। पण्डित जी ने तुरन्त उसे बुलाकर कठोर कण्ठ से कहा-मैंने सुना है, तुमने किसी बनिये की लडक़ी से अपना विवाह कर लिया है। यह खबर कहाँ तक सही है?

केशव ने अनजान बनकर पूछा-आपसे किसने कहा?

'किसी ने कहा। मैं पूछता हूँ, यह बात ठीक है, या नहीं? अगर ठीक है, और तुमने अपनी मर्यादा को डुबाना निश्चय कर लिया है, तो तुम्हारे लिए हमारे घर में कोई स्थान नहीं। तुम्हें मेरी कमाई का एक धेला भी नहीं मिलता। मेरे पास जो कुछ है, वह मेरी अपनी कमाई है, मुझे अख्तियार है कि मैं उसे जिसे चाहूँ, दे दूँ। तुम यह अनीति करके मेरे घर में कदम नहीं रख सकते।'

केशव पिता के स्वभाव से परिचित था। प्रेमा से उसे प्रेम था। वह गुप्त रूप से प्रेमा से विवाह कर लेना चाहता था! बाप हमेशा तो बैठे न रहेंगे। माता के स्नेह पर उसे विश्वास था। उस

प्रेम की तरंग में वह सारे कष्टों को झेलने के लिए तैयार मालूम होता था; लेकिन जैसे कोई कायर सिपाही बन्दूक के सामने जाकर हिम्मत खो बैठता है और कदम पीछे हटा लेता है, वही दशा केशव की हुई। वह साधारण युवकों की तरह सिद्धान्तों के लिए बड़े-बड़े तर्क कर सकता था,जबान से उनमें अपनी भक्ति की दोहाई दे सकता था; लेकिन इसके लिए यातनाएँ झेलने की सामथ्र्य उसमें न थीं। अगर वह अपनी जिद पर अड़ा और पिता ने भी अपनी टेक रखी, तो उसका कहाँ ठिकाना लगेगा? उसका जीवन ही नष्ट हो जायगा।

उसने दबी जबान से कहा-जिसने आपसे यह कहा है, बिल्कुल झूठ कहा है।

पण्डित जी ने तीव्र नेत्रों से देखकर कहा-तो यह खबर बिलकुल गलत है?

'जी हाँ, बिलकुल गलत।'

'तो तुम आज ही इसी वक्त उस बनिये को खत लिख दो और याद रखो कि अगर इस तरह की चर्चा फिर कभी उठी,तो तुम्हारा सबसे बड़ा शत्रु होऊँगा। बस, जाओ।

केशव और कुछ न कह सका। वह यहाँ से चला, तो ऐसा मालूम होता था कि पैरों में दम नहीं है।

6

दूसरे दिन प्रेमा ने केशव के नाम यह पत्र लिखा-

'प्रिय केशव!'

तुम्हारे पूज्य पिताजी ने लाला जी के साथ जो अशिष्ट और अपमानजनक व्यवहार किया है, उसका हाल सुनकर मेरे मन में बड़ी शंका उत्पन्न हो रही है। शायद उन्होंने तुम्हें भी डाँट-फटकार बतायी होगी, ऐसी दशा में मैं तुम्हारा निश्चय सुनने के लिए विकल हो रही हूँ। तुम्हारे साथ हर तरह का कष्ट झेलने को तैयार हूँ। मुझे तुम्हारे पिताजी की सम्पत्ति का मोह नहीं है, मैं तो केवल तुम्हारा प्रेम चाहती हूँ और उसी में प्रसन्न हूँ। आज शाम को यहीं आकर भोजन करो। दादा और माँ दोनों तुमसे मिलने के लिए बहुत इच्छुक हैं। मैं वह स्वप्न देखने में मग्न हूँ जब हम दोनों उस सूत्र में बँध जायँगे, जो टूटना नहीं जानता। जो बड़ी-से-बड़ी आपत्ति में भी अटूट रहता है।

तुम्हारी-

प्रेमा!

सन्ध्या हो गयी और इस पत्र का कोई जवाब न आया। उसकी माता बार-बार पूछती थी-केशव आये नहीं? बूढ़े लाला भी द्वार की ओर आँख लगाये बैठे थे। यहाँ तक कि रात के नौ बज गये, पर न तो केशव ही आये, न उनका पत्र।

प्रेमा के मन में भाँति-भाँति के संकल्प-विकल्प उठ रहे थे, कदाचित उन्हें पत्र लिखने का अवकाश न मिला होगा, या आज आने की फुरसत न मिली होगी, कल अवश्य आ जाएँगे। केशव ने पहले उसके पास जो प्रेम-पत्र लिखे थे, उन सबको उसने फिर पढ़ा। उनके एक-एक शब्द से कितना अनुराग टपक रहा था, उनमें कितना कम्पन था, कितनी विकलता, कितनी तीव्र आकांक्षा! फिर उसे केशव के वे वाक्य याद आए; जो उसने सैकड़ों ही बार कहे थे। कितनी बार वह उसके सामने रोया था। इतने प्रमाणों के होते हुए निराशा के लिए कहाँ स्थान था, मगर फिर भी सारी रात उसका मन जैसे सूली पर टँगा रहा।

प्रात:काल केशव का जवाब आया। प्रेमा ने काँपते हुए हाथों से पत्र लेकर पढ़ा। पत्र हाथ से गिर गया। ऐसा जान पड़ा,मानो उसकी देह का रक्त स्थिर हो गया हो। लिखा था-

'मैं बड़े संकट में हूँ, कि तुम्हें क्या जवाब दूँ! मैंने इधर इस समस्या पर खूब ठण्डे दिल से विचार किया है और इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि वर्तमान दशाओं में मेरे लिए पिता की आज्ञा की उपेक्षा करना दु:सह है। मुझे कायर न समझना। मैं स्वार्थी भी नहीं हूँ, लेकिन मेरे सामने जो बाधाएँ हैं उन पर विजय पाने की शक्ति मुझमें नहीं है। पुरानी बातों को भूल जाओ। उस समय मैंने इन बाधाओं की कल्पना न की थी!'

प्रेमा ने एक लम्बी, गहरी, जलती हुई साँस खींची और उस खत को फाडक़र फेंक दिया। उसकी आँखों से अश्रुधार बहने लगी। जिस केशव को उसने अपने अन्त:करण से वर लिया था, वह इतना निष्ठुर हो जायगा, इसकी उसको रत्ती भर भी आशा न थी। ऐसा मालूम पड़ा, मानो, अब तक वह कोई सुनहला स्वप्न देख रही थी; पर आँख खुलने पर वह सब कुछ अदृश्य हो गया। जीवन में जब आशा ही लुप्त हो गयी, तो अब अन्धकार के सिवा और क्या रहा! अपने हृदय की सारी सम्पत्ति लगाकर उसने एक नाव लदवायी थी, वह नाव जलमग्न हो गयी। अब दूसरी नाव कौन वहाँ से लदवाये; अगर वह नाव टूटी है तो उसके साथ वह भी डूब जायगी।

माता ने पूछा-क्या केशव का पत्र है?

प्रेमा ने भूमि की ओर ताकते हुए कहा-हाँ, उनकी तबीयत अच्छी नहीं है-इसके सिवा वह और क्या कहे? केशव की निष्ठुरता और बेवफाई का समाचार कहकर लज्जित होने का साहस उसमें न था।

दिन भर वह घर के काम-धन्धों में लगी रही, मानो उसे कोई चिन्ता ही नहीं है। रात को उसने सबको भोजन कराया,खुद भी भोजन किया और बड़ी देर हारमोनियम पर गाती रही।

मगर सबेरा हुआ, तो उसके कमरे में उसकी लाश पड़ी हुई थी। प्रभात की सुनहरी किरणें उसके पीले मुख को जीवन की आभा प्रदान कर रही थीं।

समाप्त ।